अच्छी शिक्षा के मायने बदल गए हैं

सदाशिव श्रोत्रिय

किसी देश की आर्थिक प्रगति के लिए उसके कामगारों को शिक्षित करना और स्वस्थ रखना भी आवश्यक होता है। इसीलिए इस संदर्भ में शिक्षा और स्वास्थ्य पर किए जाने वाले खर्च को अर्थशास्त्री मानव में निवेश का नाम देते हैं। पर मानव में किए जाने वाले इस निवेश को हमें इस रूप में भी देखने–समझने की जरूरत है कि इस तरह का निवेश स्वयं उस मानव जिसके लिए कि यह निवेश किया जाता है, को शारीरिक और मानसिक रूप से एक अधिक आनंदमय, सुखी और अच्छा जीवन जीने में समर्थ बनाता है। यह निवेश, इस तरह परोक्ष रूप से मानव के जीवन की गुणवत्ता में भी वृद्धि करता है। हम जानते हैं कि एक पढ़ा–लिखा, सुसंस्कृत, संवेदनशील और बहुत से विषयों की बारीकियों को जानने–समझने वाला व्यक्ति, जिस बौद्धिक और भावनात्मक स्तर का जीवन जीता है, उस स्तर का जीवन कोई अशिक्षित व्यक्ति नहीं जी सकता। हालांकि यह जरूरी नहीं कि सभी स्थितियों में पढ़े–लिखे और अनपढ़ लोगों में ऐसा ही होता है। कुछ इसी तरह की बात हम स्वास्थ्य के बारे भी कह सकते हैं कि अपनी शारीरिक दशा व क्षमता की बदौलत एक स्वस्थ व्यक्ति जीवन का जो आनंद लेने में समर्थ होता है, उस आनंद को पाने की सामर्थ्य किसी अस्वस्थ व्यक्ति में नहीं होती।

किंतु शिक्षा के द्वारा मानव जीवन की गुणवत्ता में वृद्धि के इस पहलू को, साम्राज्यवादी या पूंजीवादी व्यवस्था सामान्यतः अनदेखा कर देती है। शिक्षा के नाम पर मानव में निवेश के पीछे उसका एकमात्र मकसद उस मानव को अपने व्यावसायिक लाभ के लिए इस्तेमाल करना होता है। इसीलिए शिक्षा के वे तत्व जो किसी मानव को भावनात्मक और बौद्धिक रूप से एक सुखी और गुणवत्तापूर्ण जीवन बिताने में समर्थ बनाते हैं, इस आर्थिक व्यवस्था में निरंतर उपेक्षा का शिकार होते जाते हैं। ऐसी शिक्षा व्यवस्था से निकला व्यक्ति कुल मिला कर किसी ऊंचे पद या अधिक पैसे को ही अपने जीवन

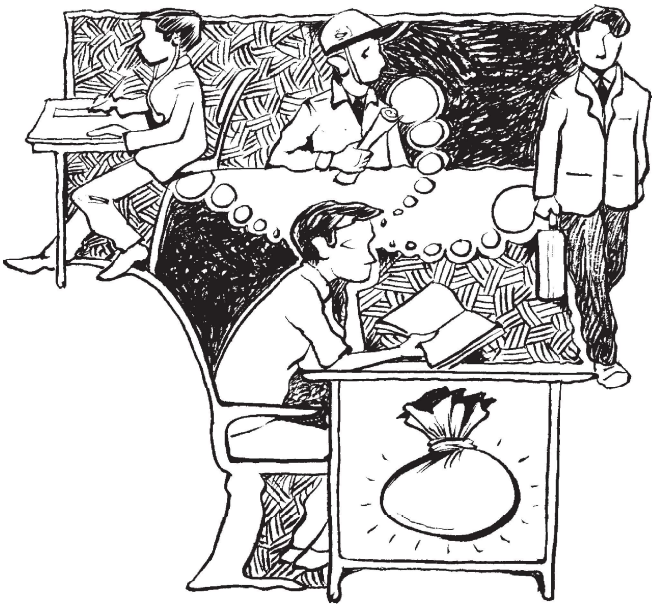

के चरम लक्ष्य के रूप में देखने लगता है और उसमें मानव जीवन को सुखी और समृद्ध बना सकने वाले अन्य बहुत से गुणों का ह्रास होने लगता है। पूंजीवादी व्यवस्था की जंगी मशीन में वह भी अंततः उसका एक पुर्जा बन कर रह जाता है, जिसके पास संपूर्णता में जीवन का आनंद लेने के लिए न तो समय होता है और न ही क्षमता।

यदि हम आज की हमारे देश की शिक्षा व्यवस्था पर दृष्टिपात करें, तो हमें बड़ी आसानी से इस बात के प्रमाण मिल जाएंगे। क्या यह आश्चर्यजनक नहीं है कि आज यदि आप किसी प्रतिभाशाली छात्र से पूछें कि वह आगे चल कर क्या बनना चाहता है, या यदि आप उसके अभिभावकों से पूछें कि वे आगे चल कर उसे क्या बनाना चाहते हैं, तो सामान्यतः आप एक ही तरह के उत्तर पाएंगे, जिनका संबंध मोटे तौर पर उस छात्र के द्वारा प्राप्त किए गए किसी ऊंचे पद या फिर उसके द्वारा उपार्जित ऊंची आय से होगा। इससे साबित होता है कि ''अधिक कमाओ और अधिक उड़ाओ'', के दर्शन वाली उपभोक्तावादी संस्कृति अपनी संपूर्ण भयावहता के साथ हमारे देश में अब पूरी तरह अपनी जड़ें जमा चुकी है।

हमारे देश के अधिकतर लोगों का आज ऊंचे पद या अधिक धन अर्जन को शिक्षा के अंतिम लक्ष्य के रूप में देखने लगना, हमारे समय की एक बहुत बड़ी विडंबना है। क्योंकि मानव जीवन की प्रकृति या नियति में मोटे तौर पर आज भी पिछले सौ, पांच सौ या हजार वर्षों की तुलना में बहुत अधिक अंतर नहीं आया है। मानव जीवन में हर्ष और विषाद के कारण आज भी मोटे तौर पर वही हैं। जन्म से युवावस्था प्राप्त करने में मानव को आज भी उतना ही समय लगता है। मानव जीवन की तमाम उपलब्धियों, अनुपलब्धियों के अंत में अब भी उसे एक दिन इस संसार से विदा होना ही पड़ता है। ऐसी स्थिति में, मानव जीवन की इस प्रकृति और नियति को निरंतर अपनी संपूर्णता में न देख पाने और उसके किसी एक भाग को ही जरूरत से ज़्यादा महत्त्व देने को अशिक्षा के सिवाय क्या कहा जा सकता है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत का दुर्भाग्य यह रहा कि अनेक शिक्षा आयोगों की अनेकों समझ भरी सिफारिशों के बावजूद, हम अपने देश में शिक्षा का कोई ऐसा स्वतंत्र मार्ग निर्धारित नहीं कर पाए जो विशिष्ट रूप से हमारी परंपराओं, हमारी सांस्कृतिक विरासत और हमारी वर्तमान सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, भौगोलिक, राजनीतिक स्थितियों के अनुरूप हो। अपनी इन विशिष्टताओं के परिप्रेक्ष्य में अपने देश के शैक्षिक विकास का कोई भारतीय मार्ग खोजने के बजाए, हम उसके लिए बराबर दूसरे देशों का मुंह ताकते रहे और उन्हीं के बताए मार्ग पर चलने की कोशिश करते रहे। इसका एक अपरिहार्य परिणाम यह हुआ कि हमारे यहां का शिक्षित वर्ग अपने परिवेश, अपनी संस्कृति और अपने ही लोगों से धीरे–धीरे कटता चला गया और सबके कल्याण में अपना कल्याण ढूंढने का कोई प्रयत्न करने के बजाए कहीं अन्यत्र जाकर, अपने लिए एक निजी स्वर्ग बना लेने का ख्वाब देखने लगा। इसका स्वाभाविक परिणाम वही हो सकता था जो किसी लंबी यात्रा के लिए निकले, उस परिवार का हो सकता है जिसके कुछ चतुर और सक्षम सदस्य अपने परिवार के अन्य सदस्यों को प्लेटफॉर्म पर ही खड़ा छोड़ कर, कोई तेज रफ्तार की गाड़ी पकड़ लें।

हमारी शिक्षा के संदर्भ में मूलभूत बात आज भी यही है कि हमें उसमें अपनी प्राथमिकताएं अपने देश, काल और परिस्थितियों को देखते हुए तय करनी चाहिए। कोई उधार की शिक्षा प्रणाली हमें उन समस्याओं, साधनों और सीमाओं की जानकारी

नहीं दे सकती जो कि हमारी अपनी समस्याएं, साधन और सीमाएं हैं। उदाहरण के लिए वक्त की पाबंदी, सार्वजनिक संपत्ति की सुरक्षा और विशिष्ट अवसरों पर महज दिखावे के लिए अनाप–शनाप खर्च से बचना अब भी हमारे राष्ट्रीय चरित्र का अंग नहीं बन पाए हैं। उन्हें आज भी हमारी शिक्षा की प्राथमिकताओं में शामिल किए जाने की जरूरत है। इसी तरह हम देखते हैं कि हमारा देश, आज जहां एक ओर जबरदस्त ऊर्जा संकट से जूझ रहा है वहीं दूसरी ओर हमारा शिक्षित वर्ग आरामतलबी के उन साधनों की ओर अधिकाधिक आकर्षित हो रहा है जिनमें ऊर्जा का घोर अपव्यय होता है। क्या यह चिंताजनक नहीं है कि जहां पश्चिमी देशों में स्वचालित वाहनों का उत्पादन पहले की तुलना में काफी कम हो गया है वहां हमारे देश में यह तेजी से बढ़ रहा है। आवागमन के सार्वजनिक साधनों को अधिक आरामदेह और सर्वसुलभ बनाने की कोई प्रेरणा देने के बजाए आज हमारा मीडिया अधिकाधिक लोगों को निजी वाहनों की खरीद के लिए प्रेरित कर रहा है।

इस बात को भी बड़ी आसानी से देखा जा सकता है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के समय निर्धारित समानता और भाईचारे के संवैधानिक लक्ष्यों से, शिक्षा के क्षेत्र में हम कितने भटक गए हैं! हमारे इस विचलन का अनुमान अकेली इस बात से लगाया जा सकता है कि आज के पचास वर्ष पहले, जिन राजकीय विद्यालयों में पढ़ कर, उस समय के लाखों छात्रों ने अपना जीवन संवारा था, आज उनमें सामान्य आर्थिक हैसियत वाले परिवार भी अपने बच्चों को भेजना पसंद नहीं करते, जबकि हमारे उन निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए होना तो यह चाहिए था कि आज के समय तक आते–आते किसी बड़ी से बड़ी हैसियत वाले भारतीय नागरिक के बच्चों की शिक्षा के लिए भी एकमात्र वे ही विद्यालय उपलब्ध होते।

यदि हमें, अपनी शिक्षा को आज भी हमारे लिए प्रासंगिक और अर्थवान बनाना है, तो हमें अपने अतीत, वर्तमान और भविष्य को ध्यान में रखते हुए, उन तमाम चीजों को पाठ्यक्रम में शामिल करना चाहिए, जो हमारे विद्यार्थियों को हमारे देश के एक मजबूत और प्रशंसनीय राष्ट्र के रूप में निर्माण हेतु प्रेरित कर सकें। यदि हम शिक्षा के क्षेत्र में लापरवाही बरत कर उन तमाम मूल्यवान चीजों को खो देते हैं जिन्हें हमारी परंपरा ने अब तक भी किसी तरह बचा कर रखा है, तो हम उसके द्वारा केवल लोगों को भोगवाद की अंधी दौड़ के लिए प्रेरित करते हैं। यदि हम उसके माध्यम से उन्हें जनसंख्या वृद्धि, पर्यावरण विनाश, पेयजल संकट या ऊर्जा संकट, जैसे खतरों के प्रति पर्याप्त रूप से सावधान नहीं करते हैं, तो इसे मानवता के प्रति हमारी अक्षम्य लापरवाही ही कहा जाएगा।

हमें गंभीरता से इस बात पर विचार करना चाहिए कि आज की पूंजीवादी विकास व्यवस्था में शिक्षा का जो स्वरूप होता जा रहा है, वह उसके द्वारा लोगों का आर्थिक दोहन कर अधिकाधिक मुनाफा कमाने के लिए भले ही अनुकूल हो, मानव जीवन को अपनी संपूर्णता में सुखी और समृद्ध बनाने में उसकी कोई भूमिका नहीं हो सकती। मानव की तमाम अन्य गतिविधियों की भांति, शिक्षा का अंतिम लक्ष्य भी यदि मानव के लिए अधिक भौतिक सुख–सुविधाएं जुटाने के साथ–साथ भावनात्मक रूप से उसे अधिक संतुष्ट और आनंदपूर्ण जीवन बिताने में सहायता करना न हो, तो उसे हम कदापि 'अच्छी शिक्षा' का नाम नहीं दे पाएंगे।

सदाशिव श्रोत्रिय : सेवानिवृत प्राचार्य (कॉलेज शिक्षा)। शिक्षा और समाज के मसलों पर निरंतर लेखन।